IJAER/ March-April 2021/Volume-9/Issue-5 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

अस्मिताबोध के संदर्भ में हिंदी का समकालीन स्त्री कथा लेखन

मुम्पा मरबम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
वेंकटेश्वर मुक्त विश्वविद्यालय, पापुम पारे
अरूणाचल प्रदेश

डॉ. सोनिया यादव
आचार्या एवं विभागाध्यक्षा, हिंदी,
वेंकटेश्वर मुक्त विश्वविद्यालय, पापुम पारे
अरूणाचल प्रदेश

आधुनिक और समकालीन दौर की महिला कहानीकारों में स्त्री की प्रतिक्रिया नितांत व्यक्तिगत नहीं है। वह कहीं न कहीं समाजबोध से युक्त हैं। उनकी मानसिकता समाज में एक व्यापक परिवर्तन की कामना से परिपूर्ण है। ''स्त्रियाँ अब पुरुषों के हाथ का खिलौना नहीं रह गई हैं। आज की स्त्रियाँ उद्‌बोधित हो गई हैं और उनमें जागृति भर उठी है। स्त्रियाँ अपने अधिकारों की माँग इसलिए नहीं कर रही हैं कि उन्हें पाकर किसी के प्रति अत्याचार किया जाए। बल्कि हमें तो अपने अधिकारों को प्राप्त करने की आवश्यकता इसलिए है जिससे कि हम अपने उन उत्तरदायित्वों का पालन कर सकें जो हमारे अधिकारों से सम्बद्ध हैं।''[1] वर्तमान दौर में स्त्री भी परिवर्तन तथा सम्यक बदलाव चाहती है। क्योंकि यह व्यवहारिक रूप से स्त्री–जीवन से भी सम्बद्ध है और उस पर प्रभाव डालता है। अनामिका लिखती हैं–''यह निरा प्रतिक्रिया नहीं है। दूसरी–तीसरी पीढ़ी के स्त्रीवादी प्रतिरोधों को निरे प्रतिक्रियावाद से कोई लेना–देना नहीं है। यह एक सुलझी हुई, शान्त, सुव्यवस्थित दृष्टि है समन्वय की–प्रकृति और पुरुष, जल और अग्नि, अंतर्जगत और बहिर्जगत जहाँ एकलय रहें–अपनी अलग अस्मिताओं के पूर्ण वैभव समेत। समझने की मूल बात है कि स्त्री और पुरुष की लड़ाई का व्याकरण लड़ाई के और व्याकरणों से जरा अलग है। ... स्त्री और पुरुष की लड़ाई एक ऐसी लड़ाई है जिसमें सत्ता का हस्तांतरण उतना अहम मुद्दा नहीं, जितना दृष्टियों और व्यक्तियों का शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और सामंजस्य का।[2] स्त्री जीवन की विसंगतियों को लेकर जिन लेखिकाओं ने कलम चलाई है उसमें ममता कालिया का नाम अत्यंत ही समादृत है। इनकी एक प्रमुख कहानी है–'पीली लड़की'। इसमें लेखिका ने दर्शाने की चेष्टा की है कि पुरुषवादी संस्कृति और सत्ता–व्यवस्था में पुरुष ही निर्णय लेता है तथा मूल्य तय करता है, सामाजिक वर्गीकरण तथा हित तय करता है। एक शिक्षित स्त्री यदि पारिवारिक मर्यादा में रहते हुए भी नवीन मूल्य स्थापित करती है तो इससे पति के अहं पर चोट लगती है और उसे स्त्री की अस्मिता कुबूल नहीं होती है। कथा नायिका पति से विद्रोह करती है तथा अपना अलग अस्तित्व और मुकाम तय करने का निर्णय लेती है। ''औरतें पति को अँगूठी और ब्लाउज के साथ–साथ निजी पूँजी ही समझती हैं और अक्सर सोचती हैं कि दुनिया भर की लड़कियाँ उनके पति पर डाका डालने वाली हैं। औरतों के बीच काम करते–करते मैं उनकी नस–नस पहचान गई थी। मुझे

लगता था औरतों के स्वभव पर मैं शोध–प्रबंध तैयार कर सकती हूँ। कॉलेज की एक सौ तीन प्राध्यापिकाओं में मैंने हर तरह की औरत देखी, शास्त्रीय भाषा में कहूँ तो लेडी मैकबेथ से लेकर अन्न कैरेनिना तक। अब तो मैं मान बैठी थी कि औरत के अंदर स्वभावगत चुड़ैलपन होता है जो दूसरों को चैन से जीने नहीं देता।''[3] स्त्री की सशंक और कारण विशेष से निर्मित संकुचित दृष्टि के साथ ही इस भाव को भी लेखिका ने कहानी में दर्शाने का प्रयत्न किया है कि स्त्रियाँ प्रायः पुरुषों के कदमों में ही अपना पूरा संसार मान लेती हैं और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्धारण नहीं करती हैं। इसी प्रकार ममता जी के उपन्यास 'बेघर' का कथानायक रवीन्द्र भी अपनी पत्नी की कटुता और फूहड़ता से आजिज आकर शोकग्रस्त मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अवसादग्रस्त होकर घर के अंदर होकर भी बेघर रहता है।

प्रभा खेतान ने भी अपने कथा–साहित्य में स्त्री–जीवन का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया जो जो नारी संसार का जीवंत दर्पण प्रतीत होता है। उसमें स्त्री की ऐसी अर्थछवियाँ निर्मित हैं जो यथार्थ नारी जीवन की विडम्बनाओं को बयान करते हैं। प्रभा खेतान लिखती हैं–''पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री विरोधी परंपराओं का आयाम पूरी तरह विशिष्ट है। ये परम्पराएँ स्त्री को घर सौंपती हैं, बच्चों का भरण–पोषण सौंपती हैं। मानवता के नाम पर वृद्ध और बीमारों के लिए उससे निःशुल्क सेवा लेती हैं, और बदले में उसके द्वारा की गई सेवाओं का महिमा–मण्डन कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेती हैं। स्त्री भूखी है या मर रही है, इसकी चिंता किसी को नहीं होती।''4 इसी प्रकार हिंदी की प्रख्यात महिला कथाकार मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपनी रचनाओं में स्त्री–जीवन के संघर्ष और अंतर्विरोध को उभारा है। उनकी रचनाओं में संघर्ष के साथ ही तीव्र विरोध भी दिखाई देता है। उनके उपन्यास 'इदन्नमम्' में स्त्री जीवन के संघर्षों का जीवंत मूर्तन हुआ है। मन्दाकिनी और कुसुमा भाभी का संवाद उनके स्त्री जीवन के सरोकारों और उनकी विडम्बनाओं को प्रस्तुत करता है–

''बिन्नू हमें एक बात समझाओ, अख्याओ कि ये रिस्ते–नाते, सम्बन्ध और मरजाद किसने बनाए? किसने सिरजी है बंधनों की रीत....? जो नाम लेती हो उनसे? मनुष्यास ने? रिसियों–मुनियों ने? देवताओं कि राच्छसों ने?

मंदाकिनी पढ़ना रोककर गौर से भाभी को देखने लगी। क्या हर दे इन सवालों का?

''भाभी ये रीति–रिवाज तो उन्होंने ही बनाए हैं जिन्होंने ये किताबें लिखी हैं। जिनके ऊपर ये किताबें लिखी गई हैं।''

''गलत बनाई हैं मन्दा। एकदम पच्छपात से रची हैं।''

''बताओ तो अग्नि साच्छी घर के गाँठ बाँधने का क्या मतलब?''

''पति और पत्नी को साच्छी–सहचर कहें तो बिरथा है कि नहीं?'' कितेक उलटा है बिन्नू, बेअरथ। यह सम्बन्ध बड़ा थाथो है।''

''लो, एक तो खूँटे बाँधा पागुर, दूसरा सरग में उड़ता पंछी।''

''ढोर और पंछी सहचर नहीं हो सकते मन्दा।''5 प्रस्तुत उद्धरण या कथांश के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री–जीवन का जीवंत यथार्थ प्रस्तुत किया है। स्त्री के पैरों में घोषित आदर्श की जो बेड़ियाँ पड़ी हैं और पुरुष का जो स्वच्छंद जीवन है, उसका यथार्थ अंकन उन्होंने किया है। वह विद्रोह भी नहीं कर सकती। विद्रोह की सीमाएँ उसके लिए देश–निकाला है। वह अपने जीवन–देश से ही बाहर कर दी जाती है। मधु संधू का इस संदर्भ में महत्वपूर्ण कथन द्रष्टव्य है–''महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में आई विविधता आश्चर्य में डाल देती है। स्त्री–जीवन के अनेक जटिल प्रश्नों के साथ–साथ, समय और समाज का कोई भी पक्ष यहाँ अछूता नहीं रहा। राजनीति और कूटनीति का कोई भी पक्ष उनकी लेखनी से ओझल नहीं हुआ। उसने राजनीति को केंद्रीय शक्ति के रूप में स्वीकारा है। उसने जान लिया है कि आज के समय में व्यक्ति के जीवन का तापमान राजनीति ही निर्धारित करती है।''6

प्रभा खेतान ने भी अपनी कथात्मक रचनाओं में विभिन्न वर्गों भी स्त्रियों के विभिन्न पक्षों का जीवंत, यथार्थ और मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया है। उनके उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें' में भारतीय और विदेशी पृष्ठभूमि की अनेक स्त्रियों के जीवन का यथार्थ और संघर्षपूर्ण चित्रण हुआ है। प्रभा जी ने स्वयं भी विदेश प्रवास के दौरान ऐसे जीवन को जिया और करीब से महसूस किया है। परिवार में बिखराव, सम्बंधों में टूटन, प्रेम और मुक्ति की छटपटाहट, आर्थिक अभावों की दैन्यता, अकेलेपन का अवसाद इत्यादि अनेक ऐसे कारक हैं जो इस उपन्यास में चित्रित हैं। आइलिन, क्लारा, मि. जी. सबका व्यक्तित्व बहिर्मुखी होने के साथ ही अंदर से बिखरा और सुप्त प्रकृति का है। प्रभा का जीवन भी उपन्यास में अत्यंत संघर्षमय है। वह अनजान परिस्थितियों में भी तनावों का डटकर मुकाबला करती है और समर्पण नहीं करती है। वह हेल्गा से कहती है–''तुम मुझे चाहे मिलियन डॉलर ही क्यों न दो? मुझे जिस समाज का सामना करना है, वह सीधे–सीधे करूँगी, भाग कर नहीं।''7 प्रभा जी के ही उपन्यास 'तालाबंदी' की नायिका सुषमा मारवाड़ी समाज से ही आती है और आदर्श प्रकृति की है। उसके पास

परिवार और प्रचुर सम्पदा है, परंतु उसका यौन–जीवन अधूरा और असंतुष्ट है। वह इन परिस्थितियों में भी समझौता कर परिवार में ही अपना जीवन खपा देती है। वह अपने पति का व्यापक सहयोग करती है और अर्पित भाव से बीमारी में उसकी सेवा करती है। परंतु प्यार की टीस उसके अंदर रह–रह कर उठती है–''प्यार किए कितने दिन हो गये, पता है? चलो तुम्हारी माँग पूरी कर देते हैं'' परंतु उसकी यौनेच्छा अपूर्ण ही रह जाती है। 'अपने–अपने चेहरे उपन्यास की रमा अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित करना चाहती है। प्रभा जी का इस संदर्भ में कहना है–''विवाह, पति और बच्चों से भी बढ़कर नारी का अलग अस्तित्व है। औरत की जिंदगी सिर्फ पुरुष की तलाश नहीं है। उसकी अपनी भी सार्थकता है।''8

मन्नू भण्डारी के कथासाहित्य में भी स्त्री–जीवन की विडम्बनाओं, बिखराव, तनाव और अलगाव का कुशलतापूर्वक चित्रण हुआ है। पति और पत्नी के अहं के टकराव के कारण उनका परिवार बिखर जाता है और बेटे बंटी का जीवन अभिशप्त हो जाता है। वह माता–पिता के तनावों के मध्य पिसता और झूलता रहता है। वह खोया–खोया सा रहने लगा है। उसका बचपन तेजी से डूबता जा रहा है–''बस चली तो सबके बीच हँसते–बतियाते उसे ऐसा लगा जैसे सारे दिन खूब सारी पढ़ाई करके घर की ओर लौट रहा है; तभी ख्याल आया–''धत वो तो स्कूल जा रहा है।''9 दुःखद रूप से उसे बाहर की दुनिया में ही घर का आभास होने लगता है। शकुन अपनी जिंदगी के दोराहे पर खड़ी है। वह बंटी का मोह भी नहीं त्याग पाती है और अपने पति से भी कड़वाहट के कारण अलग हो जाती है। वह बंटी को लेकर चिंतित अनुभव करती। ''पता नहीं उसे क्या हो गया है कि क्या हो गया है कि एक ही बात एक ही समय में उसे अच्छी भी लगती और बुरी भी। शायद कुछ और भी लगता है। हर बात कितने–कितने स्तरों पर चलती है, उसके मन में। वह खुद कुछ नहीं समझ पाती। हर बात उसके लिए जैसे एक पहेली बन जाती है या फिर वो खुद अपने लिए एक पहेली बन जाती है।''10 समग्र रूप से महिला कथाकारों का लेखन स्त्री जीवन का जीवन्त दर्पण बन कर प्रस्तुत होता है जिसमें समाज की असंख्य स्त्रियों की वेदना और कामनाएँ मूर्त और भाषित होती प्रतीत होती हैं।

संदर्भ

1. स्त्रियों को खिलौना न समझो, सुधा सिंह, स्वाधीनता संग्राम हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र, (सं.) जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ. 150, 2006
2. अनामिका : स्त्री संसार की अर्थ छवियाँ, पृ. 47, आजकल, मई 1997
3. ममता कालिया की कहानियाँ, पीली लड़की, पृ. 167, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

4. उपनिवेश में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ. 14

5. इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 139, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016

6. महिला उपन्यासकार, मधु संधू, पृ. 19

7. आओ पेपे घर चलें, प्रभा खेतान, पृ. 54, राजकमल प्रकाशन

8. हंस, अगस्त, 1989, पृ. 84, स्त्री का संभाव्य

9. आपका बंटी, मन्नू भण्डारी, पृ. 23

10. वही, पृ. 5